शिक्षण प्रकिया में विषय-पाठ का उपयोग कब और कैसे?

केवलानन्द काण्डपाल*

शिक्षा के क्षेत्र में संरचनावाद इस बात पर बल देता है कि बच्चे अपने ज्ञान का सृजन स्वयं करते हैं। संरचनावाद की एक शाखा, जिसके प्रतिपादक रूसी शिक्षाविद् वॉयगत्सकी (Lev Vygostky) माने जाते हैं, संरचनावाद के सामाजिक सांस्कृतिक सिद्धांत (Socio Cultural Theory) की ओर ले जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार ''संज्ञान का समाज के साथ गहरा संबंध है।" बच्चे के संज्ञानात्मक विकास की हरेक क्रिया दो बार या दो स्तरों पर दिखायी देती है। पहला — सामाजिक स्तर पर, (लोगों के बीच अंतर-मनोवैज्ञानिक श्रेणी (Inter-personal Category) के रूप में, दूसरा — मनोवैज्ञानिक स्तर पर (बच्चे के अंदर अंत: मनोवैज्ञानिक श्रेणी (Intrapsychological Category) के रूप में। इन दोनों ही स्तर/श्रेणियों का बच्चे के ज्ञान सृजन से गहरा संबंध है। जहाँ पहले स्तर पर बच्चा अपने आस-पास परिवेश में घटित हो रही घटनाओं, तथ्यों के बारे में सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिक्रिया का अवलोकन करता है, और इसे जानने और समझने की कोशिश करता है। वहीं, दूसरे स्तर पर इन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से प्राप्त अनुभवों एवं समझ के आधार पर अपने लिए कुछ सिद्धांत गढ़ रहा होता है, अवधारणाएँ बना रहा होता है। स्वयं के लिए अर्थ निर्मित करता है। इसका आशय है कि बच्चे के ज्ञान-निर्माण की प्रक्रिया में उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों की अहम भूमिका होती है। इस अवधारणा/मान्यता के मद्देनज़र इस आलेख में जनपद बागेश्वर के कपकोट ब्लॉक के रा.उ.प्रा.वि. सिमाल गाँव की एक कक्षा के अनुभवों को साझा करने का प्रयास किया गया है।

* जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बागेश्वर (उत्तराखंड) 263642

परिवार एवं समाज का प्रमुख प्रकार्य बच्चे का समाजीकरण करना है। यहाँ समाजीकरण का अर्थ समाज की सांस्कृतिक पूँजी को नई पीढ़ी को हस्तांतरण से लिया जाता है। इस प्रक्रिया में बच्चा समाज की ज्ञानात्मक, संस्कृति मूलक विरासत का उत्तराधिकारी बनता है। संज्ञानात्मक स्तर पर यह प्रक्रिया इस प्रकार से घटित होती है कि बच्चा या तो पहले से प्राप्त जानकारियों में नई जानकारी जोड़ता चलता है अथवा वह अपनी पूर्व-अवधारणाओं को बदलता है, शिक्षा मनोवैज्ञानिक इसे आत्मसातीकरण (Assimilation) तथा व्यवस्थापन (Accomodation) की प्रक्रिया कहते हैं। ज्ञान को हासिल करने का रास्ता यह है कि उस ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में भागीदारी की जाये। 'जिसे पहले ज्ञान का सीखना, हासिल करना और प्राप्त करना कहा जाता था उसे अब शिक्षणशास्त्र के रचनावादी मानक में ज्ञान का निर्माण कहा जाता है। इस बदलाव के पीछे विचार यह है कि ज्ञान को एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में हस्तांतरित नहीं किया जा सकता... जो ज्ञान हासिल करना चाहता है उसे अपने पास पहले से मौजूद अवधारणाओं एवं ज्ञान के माध्यम से खुद सक्रिय भागीदारी करते हुए अपने दिमाग में निर्मित करना पड़ता है। इस अर्थ में ज्ञान निर्माण एक ऐसी शास्त्रीय शब्दावली है जो सीखने वाले की मानसिक गतिविधि को केंद्र में ले आती है।' विद्यालयों में शिक्षण के क्रम में हमारी दो मान्यताएँ शिक्षण को गहन रूप से प्रभावित करती हैं। प्रथम बच्चे विषयगत संबोध के बारे में बहुत कम जानते हैं या कुछ भी नहीं जानते, इस प्रकार हम बच्चों की क्षमताओं को कम करके आंकते हैं और उनके परिवेशीय अनुभवों की उपेक्षा करते हैं। द्वितीय — हमें बच्चों को बहुत कुछ सिखाना है और वह भी पाठ्यपुस्तकों की सीमांर्तगत। 'पहले से मौजूद ज्ञान को ज़्यादा तरजीह दी जाती है, जिससे बच्चे की खुद ज्ञान सृजित करने और इस प्रक्रिया के नये तरीके खोजने की क्षमता नष्ट हो जाती है, सूचना को प्राथमिकता मिल जाती है।' अत: पाठ्यपुस्तकें संबोध विशेष के लिए एकमात्र स्रोत बनकर रह जाती हैं, बच्चे सीखने के लिए अध्यापक पर निर्भर हो जाते हैं और बच्चों के लिए सीखने की जवाबदेही लेने के अवसर सीमित हो जाते हैं।

इन दोनों मान्यताओं से बाहर निकलने की ज़रूरत है। पहला काम यह करना होगा कि पाठ से संबंधित दक्षता के मध्य नज़र बच्चों को खोजबीन एवं जाँच-पड़ताल के समुचित अवसर दिए जाएँ और दूसरा यह कि बच्चों द्वारा खोजबीन एवं जाँच-पड़ताल की प्रक्रिया में (ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में) सतत हस्तक्षेप न करके, केवल बहुत ज़रूरी होने पर ही सुगमकर्ता के रूप में अपनी भूमिका के प्रति सचेत रहें, तदनुरूप बच्चे की ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में सहभागी बनें। बच्चे अपने ज्ञान का सृजन स्वयं करता है, यह केवल सैद्धांतिक जुमलेबाज़ी नहीं है, इसके लिए कक्षा-कक्ष प्रक्रियाओं में ज़रूरी बदलाव भी करने होंगे। इस समझ को कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में कैसे उपयोग में लाया जाए, इसके क्रियान्वयन का एक बहुत ही उपयोगी अवसर मुझे मिला, सो इसी अनुभव को साझा करना चाहूँगा।

संयोगवश मुझे बागेश्वर जनपद के सुदूरवर्ती विद्यालय, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय सिमाल गाँव, के अनुश्रवण का अवसर मिला। यह विद्यालय जनपद के सूदूरवर्ती कपकोट ब्लॉक में जनपद मुख्यालय से लगभग 62 किमी. की दूरी पर अवस्थित दुर्गम क्षेत्र का विद्यालय है। यह विद्यालय ग्रामीण क्षेत्र में अवस्थित है, अत: स्वाभाविक रूप से इस विद्यालय में नामांकित सभी 59 बच्चे ग्रामीण क्षेत्र से हैं। इस विद्यालय में प्रधानाध्यापक श्री प्रेम सिंह कोरंगा सहित कुल तीन अध्यापक कार्यरत हैं। इस विद्यालय की कक्षा 7 में 19 बच्चे नामांकित थे। मुझे इस कक्षा के बच्चों से बातचीत करने की अनुमति विद्यालय के प्रधानाध्यापक से मिल गयी। कक्षा में नामांकित सभी बच्चे उस दिन कक्षा में उपस्थित थे, सो मेरा उत्साहित होना स्वाभाविक था। बच्चों से शुरुआती परिचय के बाद मालूम हुआ कि इस कालांश में बच्चों को सामाजिक विज्ञान विषय पढ़ाया जाता है और बच्चों ने बताया कि आज सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में 'जानें अपनी संस्कृति को' पाठ पढ़ाया जाना है। बच्चों ने सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में पृष्ठ 88 पर यह पाठ खोलकर रखा था। मैंने बच्चों से मालूम करना चाहा कि पाठ को बच्चों ने अपने से पढ़ने की कोशिश की, बच्चों ने एक स्वर से बताया नहीं, यह तो आज गुरू जी पढ़ाएँगे। बच्चे एकदम इंस्टेंट ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयार बैठे थे। दरअसल इसमें बच्चों का कोई दोष नहीं था, संभवत: कक्षा-कक्ष प्रक्रिया के बारे में उनके यही अनुभव रहे हों। मेरे लिए यह एक अवसर था, मेरे मन में द्वंद्व चल रहा था कि क्या कक्षा-कक्ष शिक्षण प्रक्रिया में कुछ बदलाव करके बच्चों को कुछ भिन्न अनुभव दिए जा सकते हैं? विद्यार्थियों से बात करना ज़रूरी था कि 'जानें अपनी संस्कृति को' पाठ को लेकर मैं बच्चों से बात कर सकता हूँ। बच्चों की सहमति के बाद विषयाध्यापक एवं प्रधानाध्यापक दोनों से अनुमति भी लेनी ज़रूरी थी, सो वह ले ली।

कक्षा 7 की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में पृष्ठ 88 से 98 तक 11 पृष्ठों में जो विषय वस्तु दी गयी है, वह उत्तराखंड के संदर्भ में है। कक्षा की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक के पाठ 'जानें अपनी संस्कृति को' सरसरी तौर पर देखने के बाद महसूस हुआ कि इसमें बच्चों से चर्चा के जो बिंदु दिये गये हैं, उनमें भाषा-बोली, वेश-भूषा, आजीविका के साधन, पहनावा, त्यौहार, मेले आदि से संबंधित हैं। मेरा अनुमान था कि पुस्तक के पाठ के आधार पर शिक्षण करने पर संस्कृति को जानने-समझने संबंधित कुछ तथ्यात्मक जानकारी तो मिल जायेगी, परंतु पाठ से संबोधित किए जा सकने, कौशलों एवं मूल्यों के प्रति सम्यक न्याय नहीं हो पायेगा। इसमें बच्चों के स्थानीय संदर्भों को स्पेस की अति सीमित संभावना स्पष्ट महसूस हो रही थी। दूसरा सीधे पाठ से ही बातचीत शुरू करने पर यह खतरा सामने था कि बच्चे पाठ द्वारा निर्धारित फ्रेम में बँधकर रह जाएँगे और खोजबीन के अवसर सीमित हो जाएँगे। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में 'तथ्यों की सतह से नीचे जाकर भी उनके बीच गहरे संबंधों को समझने की ज़रूरत होती होती है, जो उन्हें अर्थ और महत्त्व प्रदान करते हैं।'

मेरा अंदाज़ा था कि इस पाठ के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कम से कम चार कालांशों की ज़रूरत होगी। मेरी सीमा थी कि मैं लगातार चार दिन वहाँ नहीं रह सकता था। एक रास्ता ज़रूर था कि यदि मुझे चार कालांश आज ही के दिन मिल जाएँ तो कुछ हद तक काम बन जाये। मेरे निवेदन को विषयाध्यापक एवं प्रधानाध्यापक, दोनों ने स्वीकार कर लिया। मुझे मध्यावकाश के पूर्व का समय उपलब्ध हो गया। मेरे पास प्रति कालांश 35 मिनट के हिसाब से चार कालांशों का कुल दो घंटे बीस मिनट उपलब्ध थे। अत: आज के पाठ 'जानें अपनी संस्कृति को' पर काम करने के लिए शिक्षण योजना की एक मोटी-मोटी रूपरेखा बना ली, यह रूपरेखा इस प्रकार थी —

- पहले आधा घंटा बातचीत — संस्कृति को लेकर बच्चों के अनुभवों, समझ एवं संदर्भों को जानने-समझने के लिए यह ज़रूरी था।
- पाँच मिनट का ब्रेक — किशोरवय बच्चे लगातार लंबे समय तक एक ही विषय एवं पाठ से ऊब महसूस करेंगे, इसलिए यह ज़रूरी था।
- आधे घंटे की सामूहिक गतिविधि — विद्यार्थियों को खोजबीन एवं जाँच-पड़ताल के अवसर देने के लिए इसकी आवश्यकता थी। यह उम्मीद थी कि किसी क्षेत्र/स्थान विशेष की संस्कृति को जानने-समझने के कौशल विकसित करने में इससे कुछ मदद मिल सकेगी।
- अगले आधे घंटे समूह के निष्कर्षों को साझा करना — इसमें बच्चे अपने-अपने समूह के निष्कर्षों को प्रस्तुत करेंगे, अन्य समूह अपने विचार रखेंगे, कक्षा में आये विचारों को श्यामपट्ट पर लिखने का कार्य विषयाध्यापक करेंगे। बहुत ज़रूरी होने पर मैं स्वयं एवं विषयाध्यापक फ़ीडबैक देंगे और यह तथ्यों को सुगम करने तक सीमित रहेगा। प्रयास यह होगा कि विद्यार्थियों की ज्ञान रचना के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे।
- पाँच मिनट का ब्रेक।
- अंतिम चालीस मिनट में (यदि ज़रूरत हुई तो कुछ अतिरिक्त मिनट) पुस्तक के पाठ का अध्ययन एवं पाठ में सुझायी गयीं गतिविधियों पर चर्चा, यह बहुत ज़रूरी था।

मेरी योजना थी कि पाठ द्वारा संकेतित दक्षताओं के आलोक में संस्कृति के ज्ञान पक्ष (जिसमें संस्कृति के तत्वों की मोटी-मोटी समझ, संस्कृति क्या है? किस प्रकार जीवन को प्रभावित करती है? किस प्रकार जीवन के तौर-तरीकों से प्रभावित होती है? आदि।) के बारे में एक मोटी-मोटी समझ बनाना। इसके बाद संस्कृति के मूलभूत तत्वों को पहचानने हेतु आवश्यक कौशल के विकास हेतु समूह गतिविधि। बाद में यदि संभव हो सका तो संस्कृति से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मूल्यों को चिह्नित करने का प्रयास किया जाए। अंत में पुस्तक के पाठ का विद्यार्थियों द्वारा स्व-पठन किया जाएगा और बाद में छात्र स्वयं तय कर सकेंगे कि पाठ में दी गयी गतिविधियों के लिए क्या-क्या करना है? क्या-क्या किया जा सकता है? भूमिका में इस प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं/कठिनाइयों के समाधान के क्रम में अध्यापक सुगमकर्त्ता की भूमिका में रहेगा, मैं उस विशेष दिन में इस भूमिका का निर्वहन करूँगा।

पारंपरिक अभिमुखीकरण के कारण बच्चों की रुचि पाठ को पढ़ने में अधिक थी। बच्चों के हाव-भाव से स्पष्ट था कि पुस्तक के पाठ को पढ़े बगैर काम नहीं चलेगा। उनके संदेह को सम्मान देना मेरी पेशेवर ज़िम्मेदारी भी थी। बस हमें यह काम सबसे अंत में करना था। मेरे मन के कोने में यह विश्वास ज़रूर था कि यदि बातचीत, समूह गतिविधि एवं बच्चों के प्रस्तुतीकरण समुचित ढंग से संपन्न हो जाए तो फिर मुझे परंपरागत ढंग से किताब के पाठ को पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी, कोई अन्य रास्ता ज़रूर निकल आएगा।

यह रूपरेखा मैंने बच्चों के साथ साझा की। बच्चों के लिए यह एक नया अनुभव था। आने वाले चार कालांशों में क्या-क्या होने वाला है? बच्चों को यह मालूम हो गया था कि अब कालांशों में क्या-क्या होगा? यह बच्चों के लिए रहस्य नहीं रह गया था। बच्चे खुश थे कि मैंने अपनी शिक्षण योजना को साझा करके उनको सहभागी बनाया है और मैं एक अन्य कारण से खुश था कि कम से कम आज के दिन के लिए बच्चों ने मुझे सामाजिक विज्ञान का विषयाध्यापक स्वीकार कर लिया है। मैंने विषयाध्यापक से आग्रह किया कि इस दौरान कक्षा-कक्ष प्रक्रिया में सहभागी के रूप में शामिल रहें। उन्होंने अतिरिक्त उदारता दिखलाते हुए सहमति दी और यथा संभव इस प्रक्रिया में सहभागिता की और कक्षा-कक्ष गतिविधियों में मेरी बहुमूल्य मदद की। यह विद्यालय मध्य हिमालयी क्षेत्र में अवस्थित है, ठंड भी अच्छी-खासी थी। फ़रवरी माह का प्रथम सप्ताह था, ठंड थी, सो कक्षाओं को धूप में लगाना बहुत ज़रूरी भी था। प्रधानाध्यापक महोदय की कुर्सी और मेज़ (ऑफ़िस) विद्यालय के मैदान के एक कोने में लगी थी, वहीं से वह विद्यालय की तीनों कक्षाओं (6,7,8) का अवलोकन सहजता से कर सकते थे। यह एक तरह से मेरे लिए अच्छा ही था कि प्रधानाध्यापक महोदय प्रक्रिया का अवलोकन कर रहे हैं। मेरी योजना थी कि प्रधानाध्यापक सहित अन्य अध्यापकों से कक्षा प्रक्रिया के बाद में बातचीत करूँगा, जिससे मेरे जाने के बाद विमर्श जारी रहे। डायट अभिकर्मी होने के नाते अनुश्रवण के क्रम में, मैं विद्यालय में था और विद्यालय के प्रधानाध्यापक सहित सभी अध्यापकों से अकादमिक मुद्दों पर बातचीत करना अनुश्रवण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग रहता है।

कक्षा की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अवयव है विषय पाठ के बारे में विद्यार्थियों की वर्तमान समझ को जान लेना। मेरी शिक्षण योजना में प्रथम चर्तुथांश बच्चों से बातचीत करते हुए उनके विषय पाठ से संबंधित संदर्भ को जानना शामिल था। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* भी निर्देश देती है कि 'अध्यापक की भूमिका है बच्चों को अभिव्यक्ति के लिए एक सुरक्षित स्थान व अवसर देना और साथ ही एक निश्चित प्रकार की अन्त:क्रिया स्थापित करना।'

बच्चों के लिए आश्चर्यजनक था कि किसी पाठ की शुरुआत बातचीत से भी हो सकती है क्या? मैं उनके विस्मित चेहरे देख रहा था, मन ही मन आकलन भी कर रहा था कि इस तरह से शुरुआत करने में क्या-क्या चुनौतियाँ आने वाली हैं? खैर बातचीत शुरू हुई। बच्चों के परिवेश के संदर्भों में बातचीत करना ज़रूरी था, तभी बातचीत विद्यार्थियों के लिए अर्थ निर्मित कर सकती है। संयोग से मेरा गृह जनपद

होने के कारण परिवेश के बारे में मेरी जानकारी आगे की बातचीत एवं गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण निवेश हो सकती थी। कक्षा के विद्यार्थियों की उम्र 13–14 वर्ष के आस-पास थी। मेरा अनुमान था कि इन बच्चों ने विगत 4–5 वर्षों से अपने आस-पास के जीवन, जीवन की परिस्थितियों, उपलब्ध सुविधाओं एवं सेवाओं में परिवर्तन एवं इनसे जीवनचर्या में आये बदलावों पर नजर रखने लगे होंगे। अत: अपने आस-पास के जीवन में आए हुए बदलावों के बारे में जानते समझते होंगे और फिर परिवार के बड़े-बुज़ुर्ग अपने समय एवं आज के समय की तुलना करते हुए बदलते मंज़र की बातें तो यदा-कदा करते ही रहते हैं। बच्चों के लिए यह कही-सुनी गयी बातें संज्ञान की दृष्टि से बहुमूल्य संदर्भ प्रदान करती ही हैं। अत: विद्यार्थियों से जानने की कोशिश की कि उनके आस-पास की जीवनचर्या, रहन-सहन के तौर-तरीके, आपसी व्यवहार, सहयोग, काम करने एवं विचार विनिमयों के तौर-तरीकों में किस-किस प्रकार से बदलाव आ रहे हैं?

उनके आस-पास की जीवनचर्या, रहन-सहन के तौर-तरीके, आपसी व्यवहार, सहयोग, काम करने एवं विचार विनिमयों के तौर-तरीकों के बारे में बच्चों से बातचीत हुई और खूब अच्छी बातें भी हुईं। मैंने भी अपने गाँव परिवेश के जीवन के तौर-तरीकों, उनमें आये बदलावों को बच्चों से साझा किया। यह बातचीत लगभग आधा घंटा चली, जो लगभग पूर्व निर्धारित योजनानुसार ही था। बच्चों ने बातचीत में संस्कृति के दायरे में आने वाले कई महत्वपूर्ण मसलों की ओर इशारा किया। बच्चे कुमाउँनी मिश्रित हिंदी में बातचीत करने में सहज थे, मैं इसका अभ्यस्त हूँ। बच्चों से बातचीत के कुछ बिंदु निम्नवत उभरकर सामने आए। (समझने की सुविधा की दृष्टि से कुछ कुमाउँनी शब्दों का हिंदी रूपांतरण किया गया है परंतु मूलभाव यथावत है)

- 'हमारा रहन-सहन जलवायु, उगाये जाने वाले अनाज, मिलने वाले फल, सब्ज़ियों, पर निर्भर करता है।' — कक्षा की एक बालिका
- 'हमारे जीवन के तौर-तरीकों में अब बहुत बदलाव आ गया है। पहले हम सब मिल-जुलकर रहते थे, सुख-दुख में एक-दूसरे के काम आते थे, अब तो जिसके पास पैसा है वह मज़े में है, गरीब को तो कोई पूछने वाला भी नहीं है। सरकार भी कुछ नहीं करती है।' — कक्षा का एक बालक
- 'पिछले कुछ सालों से हमारे क्षेत्र में सुविधाएँ बढ़ी हैं, सड़क आई, बिजली आई, मोबाइल फ़ोन, टी.वी. आदि गाँव में आ गये। इतना सब कुछ तो हुआ पर आपसी भाईचारे में कमी आ गयी।' — कक्षा की एक बालिका
- 'अब अमीर-गरीब में अंतर साफ़ नज़र आता है। मेरे दादा जी कहते हैं कि उनके दिनों में सभी की हालत लगभग एक जैसी ही थी।' — कक्षा की एक बालिका

इसी प्रकार से अन्य बच्चों द्वारा जो बातें रखी जा रहीं थीं, उससे यह स्पष्ट था कि बच्चे अपने आस-पास के परिवेश के बारे में सजग हैं, इनमें होने वाले परिवर्तनों पर नज़र रखते हैं, इनके बारे में उनकी अपनी राय है । यह बहुत ही उपयुक्त समय था कि बच्चों की इस विचार प्रक्रिया को समूह गतिविधि

के माध्यम से आगे बढ़ाया जाए। यद्यपि बच्चों से साझा की गयी योजना में पाँच मिनट के ब्रेक की व्यवस्था थी, परंतु बच्चों ने बिना किसी ब्रेक के आगे जारी रखने की बात कही। मेरे लिए तो यह बहुत ही उत्साहजनक बात थी, मैं मन ही मन चाह भी यही रहा था कि बच्चों के मस्तिष्क में जो विचारोद्वेलन चल रहा था, उसमें बाधा न आए और यह किसी निश्चित दिशा की ओर आगे बढ़े।

से पोषित था। तीन समूहों में पाँच-पाँच बच्चे थे, सिर्फ़ एक समूह में चार ही बच्चे थे। समूह बन जाने के बाद बच्चों को समूह को दिए गये बिंदुओं पर चर्चा करनी थी और समूह के निष्कर्षों को कक्षा में सभी बच्चों के सामने प्रस्तुत करना था। बच्चों को इस बात की छूट थी कि ज़रूरत पड़ने पर वे एक-दूसरे के समूह में जाकर बातचीत कर सकते हैं, मैदान में समूह अलग-अलग जगह बैठकर बातचीत कर सकते हैं परंतु निर्धारित समय के बाद प्रत्येक समूह को दिए गये बिंदुओं पर अपने समूह के विचार कक्षा में साझा करने होंगे। समूह के लिए विचार-विमर्श के लिए निम्न बिंदु निर्धारित किए गए —

> *"संस्कृति ऐसी चीज़ है, जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किंतु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में वह सभ्यता से भिन्न गुण है।... निष्कर्ष यह है कि संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज़ होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है, जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंध।... संस्कृति ऐसी चीज़ नहीं कि जिसकी रचना दस-बीस या सौ-पचास वर्षों में की जा सकती हो! अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस तरह खाते-पीते, रहते-सहते, पढ़ते-लिखते, सोचते-समझते और राज-काज चलाते अथवा धर्म-कर्म करते हैं, उन सभी कार्यों से संस्कृति उत्पन्न होती है; यहाँ तक कि हमारे उठने- बैठने, पहनने-ओढ़ने, घूमने-फिरने और रोने-हँसने में भी हमारी संस्कृति की पहचान होती है, यद्यपि हमारा कोई भी एक काम संस्कृति का पर्याय नहीं बन सकता। असल में संस्कृति ज़िंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं।"*
>
> (रामधारी सिंह दिनकर, 1956)

कक्षा में मौजूद 19 बच्चों के चार समूह बनाये, ये समूह कुछ हद तक बच्चों द्वारा अपनी मित्रता/घनिष्ठता के आधार पर बन गये थे। मैंने बस इतना भर किया कि कुछ बच्चों को एक समूह से दूसरे समूह में जाने के लिए सुझाव दिया, बच्चे मान गये। अभी तक की बातचीत से मुझे यह अनुमान हो ही गया था कि समूह गतिविधि को आगे बढ़ाने में कौन-कौन से बच्चे मददगार हो सकते हैं। मुझे यह स्वीकार करना ही चाहिए कि मेरा यह व्यवहार कुछ हद तक पूर्वाग्रह

- हमारे क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन, खान-पान, पहनावा, रीति-रिवाज, विचार-व्यवहार किस प्रकार का है? यह किन-किन बातों से निर्धारित होता है?
- पिछले कुछ वर्षों में हमारे क्षेत्र में कौन-कौन सी सुविधाएँ जुड़ी हैं? जैसे — सड़क, बिजली,

पानी, अस्पताल, स्कूल आदि। इनसे हमारी जीवनचर्या में क्या-क्या बदलाव आये हैं?

- आपके क्षेत्र की जीवनचर्या की कौन-कौन सी खास बातें हैं? ये खास बातें क्यों महत्वपूर्ण हैं?
- यदि हमें किसी क्षेत्र में रहने वाले लोगों जीवनचर्या के बारे में जानना हो तो हमें इसके लिए क्या करना चाहिए? इसे जानने के कौन-कौन से साधन हो सकते हैं ?

इसके लिए 35 मिनट निर्धारित थे, मेरा विचार था कि यदि बच्चे कुछ और समय चाहेंगे, समूह गतिविधि किसी खास मुकाम पर है तो अतिरिक्त समय दिया जायेगा, हमारे पास ब्रेक के समय की बचत के 5 मिनट तो थे ही। समय विभाजन तो शिक्षण योजना की दृष्टि से किया गया था। समूह में समझ बन रही है, सीखने की प्रक्रिया गतिमान है, ऐसी दशा में योजना में बदलाव किया जा सकता है। वस्तुत: शिक्षण योजना लचीली होनी चाहिए, यह लक्ष्य को पाने का साधन भर है, अपने आप में लक्ष्य नहीं।

समूह गतिविधि का उद्देश्य मुख्यत: यह था कि बच्चे अपने अनुभवों, समझ का उपयोग करते हुए आपस में चर्चा करके विषय-वस्तु की खोजबीन (Explore) करने का प्रयास करें। समूह के लिए खोजबीन के दायरे निर्धारित मात्र थे, बच्चे इसके बाहर जाकर साचेंगे, निष्कर्ष निकाल सकेंगे, यह उम्मीद तो थी ही। समूह के माध्यम से वस्तुत: निम्न मुद्दों पर विचार-विमर्श एवं खोजबीन होने की उम्मीद थी—

1. क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन, खान-पान, पहनावे, रीति-रिवाज, विचार-व्यवहार को निर्धारित करने वाले तत्वों की खोजबीन। अर्थात् जीवनचर्या को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान।
2. भौतिक सुविधाओं से इनमें पड़ने वाले प्रभावों की जाँच-पड़ताल।
3. क्षेत्र विशेष की संस्कृति की खास बातों को चिह्नित करना, जो उस क्षेत्र विशेष की संस्कृति के मूल्यों की ओर संकेत करते हैं।
4. किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति को जानने-समझने के लिए आवश्यक कौशलों का विकास करना। वस्तुत: पुस्तक के विषय पाठ में यह अपेक्षा की गयी थी कि बच्चे चित्रों को देखकर उस क्षेत्र की संस्कृति के बारे में अनुमान लगा सकें।

समूह गतिविधि में लगभग 42 मिनट तक संलग्न रहे और इसमें बाधा डालकर आगे बढ़ना उचित नहीं था। बीच-बीच में मैं एवं विषयाध्यापक विभिन्न समूहों में शामिल होकर समूह की बातचीत एवं उसकी दिशा का जायज़ा लेते रहे, एकाध अवसरों पर अपनी ओर से कुछ संकेत भर दिए। बच्चों के समूह में जो ऊर्जा सृजित हो रही थी, वही तो सीखने की प्रक्रिया का अहम हिस्सा है। लक्ष्य शिक्षण/शिक्षण योजना नहीं है वरन् प्रक्रिया है, जो उस वक्त मज़बूती से आगे बढ़ रही थी। खैर, जब सभी समूह अपने प्रस्तुतीकरण के लिए तैयार हो गये, समूह गतिविधि एक तरह से पूर्ण हुई। बच्चे तो तुरंत ही प्रस्तुतीकरण के लिए उद्धत थे परंतु अब कम से कम 5 मिनट बच्चों के लिए ब्रेक ज़रूरी था, सो यह ब्रेक लिया गया। बच्चे तो जैसे इस प्रक्रिया से अलग होना नहीं चाह रहे थे, वे तो अभी भी उन्हीं मुद्दों पर बातचीत कर रहे थे। वास्तव में जब सीखने की प्रक्रिया एक

बार शुरू हो जाती है तो परिणति तक पहुँचे बिना चैन आता भी नहीं।

5 मिनट के ब्रेक के बाद बच्चों के समूह वार प्रस्तुतीकरण शुरू हुए और मेरी अपेक्षाओं से कहीं उच्च स्तर के थे।

पहले समूह ने बताया कि हमारा जीवन न केवल मौसम, जलवायु, क्षेत्रीय उपज एवं सुविधाओं पर निर्भर करता है वरन् विभिन्न सूचना के साधन जैसे — समाचार-पत्र, टी. वी. सीरियल, पोस्टर आदि भी प्रभावित करते हैं। अब परंपरागत लोक कथाओं, लोकगीतों के स्थान पर टी.वी. सीरियल की कहानियों की चर्चा, फ़िल्मी गीत, समाचार-पत्रों की मुख्य खबरों को जगह मिलने लगी हैं। इन सभी से लोगों के सोचने-विचारने के तौर-तरीकों में बदलाव आए हैं। लोगों का शहरी जीवन से संपर्क बढ़ा है, इसका असर ग्रामीण जीवनचर्या पर पड़ा है। (जीवनचर्या के प्रभावित करने वाले कारकों को पहचानने की उम्दा कोशिश।)

दूसरे समूह ने जिसने 'क्षेत्र में विगत में कौन-कौन सी सुविधाएँ बढ़ी हैं और इन्होंने हमारे जीवन को किस तरह से प्रभावित किया है?' मुद्दे पर काम करना था, ने अपने समूह के बहुत ही महत्वपूर्ण अवलोकन बिंदु प्रस्तुत किए मसलन — हमारे क्षेत्र में सड़क आने से हमारे गाँव में पैदा होने वाली सब्ज़ी, फल, घी आदि को पास के बाजारों में बेचना आसान हुआ है, लोगों की आमदनी में थोड़ी-बहुत बढ़ोत्तरी हुई है। अब हम रोगियों को आसानी से अस्पताल पहुँचा सकते हैं, पहले डोली-पालकी में ले जाना होता था, इसमें बहुत समय लगता था, कभी-कभी तो रोगियों की रास्ते में ही मौत तक हो जाती थी। इसके साथ ही शादी-ब्याह एवं अन्य अवसरों पर सेठ लोग टेन्ट, हलवाई, बाजा, सजावट के सामान की व्यवस्था कर लेते हैं, गरीब आदमी क्या करें? लोगों में मिलजुल कर काम करने की भावना धीरे-धीरे कम होती जा रही है। (बदलाव के महत्वपूर्ण तत्वों को रेखांकित करने का प्रयास।)

इसी प्रकार बिजली आने से जीवन सुविधापूर्ण हुआ है, टी.वी. के माध्यम से देश-दुनिया के बारे में हमारी समझ बढ़ी है परंतु इसका नुकसान भी हुआ है, अब शादी-ब्याह एवं अन्य अवसरों पर डी.जे. चलने लगे हैं, हमारे परंपरागत लोकगीत, झोड़े-चांचरी (स्थानीय लोकगीत-लोकनृत्य) तो सुनने में ही नहीं आते, एक तरह से इनको हम भूल ही गये हैं। निकट में विद्यालय खुलने से अब लड़कियाँ पढ़ने लगी हैं। पेयजल की सुविधा घरों के नज़दीक होने से परंपरागत पेयजल स्रोतों *धारे*, *नौले* आदि की उपेक्षा करने लगे, इनका रख-रखाव एवं संरक्षण करना हमने छोड़ दिया है। अब हम टीवी, मोबाइल पर ज़्यादा समय लगाने लगे हैं, परिवार के बड़े-बुज़ुर्गों से हमारी बातचीत लगातार कम होती जा रही है, उनके अनुभवों को संजोना हमने कम कर दिया है या छोड़ ही दिया है। सुविधाओं के बढ़ने से जीवन आसान तो हुआ है परंतु हमारी परंपरागत जीवन के कुछ महत्वपूर्ण बातों की हमने उपेक्षा भी की है। (बच्चों द्वारा भौतिक सुविधाओं के आलोक में जीवन में आये बदलावों पर अति महत्वपूर्ण अवलोकन।)

तीसरे समूह, जिसके ज़िम्मे अपने क्षेत्र के जीवन के मूल्यों को चिह्नित करना था, ने अपनी बात रखते

हुए बताया कि अब हम लोग सुविधाओं के आदी हो रहे हैं। सेठ एवं अमीर लोग ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, जैसे उनको दूसरों की ज़रूरत ही नहीं है। पैसे के बलबूते उनका काम चल भी जाता है, परंतु आम आदमी एवं गरीब लोगों को अभी भी एक-दूसरे की ज़रूरत है। ये लोग मिलजुल कर काम करने में यकीन रखते हैं, एक-दूसरे के सुख-दुख में भागीदार होते हैं, एक-दूसरे की मदद करते हैं। मेहनत से काम करते हैं, संतुष्ट रहते हैं, ईमानदारी से कमाना पसंद करते हैं। (अपने क्षेत्र की संस्कृति के मूल्यों की पहचान का प्रयास।)

चौथा समूह, जिसे यह पता लगाना था कि किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति को जानने-समझने के लिए क्या-क्या करना ज़रूरी होगा, ने अपनी बात रखते हुए बताया कि केवल कुछ चित्रों को देखकर इसके बारे में पता लगाना कठिन है। इसके लिए हमें उस क्षेत्र के जीवन के बारे में और अधिक जानने के लिए पढ़ना होगा, उन लोगों से बातचीत करनी होगी और अच्छा हो कि हम उन लोगों के बीच में कुछ दिन रहें, उनके त्यौहारों में शामिल हों, उनके परिवार के बीच कुछ दिन रहकर जीवनचर्या को समझें, तभी हम कुछ ठोस इस बारे में कह सकते हैं। (किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति को जानने-समझने के कौशलों की ओर संकेत।)

बच्चों की समूह प्रस्तुतियों से यह संतोष कर लेने के ठोस प्रमाण सामने आ रहे थे कि बच्चों ने मुद्दों की गहनता से जाँच-पड़ताल (explore)की है, बच्चों के समूहवार प्रस्तुतीकरण से एक तरह से स्पष्ट था कि बच्चों ने अपनी समझ को बेहतर ढंग से प्रस्तुत (explain) किया है। (कक्षा 7 के बच्चों के हिसाब से इसे उम्दा ही माना जाना चाहिए।)

प्रस्तुतीकरण के दौरान अन्य समूहों ने अपने- अपने विचार रखे। कुछ जोड़ा-घटाया भी। मुझे कुछ बिंदुओं को और अधिक स्पष्ट (elaborate) करने की ज़रूरत महसूस हुई सो अपनी समझ के अनुसार यह किया भी। इस प्रक्रिया में लगभग 40 मिनट लगे। यद्यपि 5 मिनट का ब्रेक पूर्व-निर्धारित था, परंतु बच्चों ने आगे जारी रखने पर ज़ोर दिया।

अब बारी थी पाठ्यपुस्तक के पाठ को पढ़ने की, मेरी अपेक्षानुसार मुझे इसको पढ़ने की ज़रूरत नहीं पड़ी। सभी बच्चों ने एक स्वर में कहा कि वे पाठ स्वयं पढ़ेंगे, जिन बिंदुओं पर उनको कठिनाई होगी, नोट कर लेंगे तथा बाद में पूछेंगे। अभी तक जो बातचीत, समूह में बातचीत, प्रस्तुतीकरण में विचार-विमर्श हुआ था, संभवत: उससे बच्चों का यह विश्वास पुख्ता हुआ हो कि वह पुस्तक स्वतंत्र रूप से पढ़कर अपने लिए कुछ अर्थ निर्मित कर

बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण अधिगम प्राप्ति के लिए प्राथमिक संदर्भ होता है जिसमें ज्ञान अपना महत्त्व अर्जित करता है। परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। हालाँकि पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षा-शास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही इस समझ की अवहेलना की गई है।

सकते हैं। हमारे पास मध्यावकाश होने में लगभग 32–33 मिनट थे। समय को लेकर मैं तनिक फ़िक्रमंद हो रहा था, बच्चे ना समझें, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। अत: उन्होंने कहा, 'आप फ़िक्र ना करें सर, हम अब काम पूरा करके ही कक्षा छोड़ेंगे। मध्याह्न भोजन हम कुछ देर से ले लेंगे। आखिर आपको भी तो वापस जाना है।' बच्चों की संवेदनशीलता से तो मैं कई बार दो-चार हुआ हूँ, पर इतने गहन स्तर की, सचमुच मैं भावुक हो गया था, उस क्षण। बच्चों ने पाठ को मनोयोगपूर्वक पढ़ा, लगभग 36 –37 मिनट में पढ़ लिया। बच्चों ने अपनी जिज्ञासाएँ रखीं, अपनी सामर्थ्य एवं विवेक के अनुसार मैंने इनको संबोधित किया। पाठ की गतिविधियाँ बच्चों ने आपस में बाँट लीं। जिसे उन्होंने अगले दिनों में पूरा करने की इच्छा रखी। विषयाध्यापक साथ तो थे, जो आने वाले दिनों में इस पाठ पर काम करेंगे ही। मैंने बच्चों के उत्साह का लाभ लेते हुए अपेक्षा की कि वे अपने क्षेत्र की संस्कृति को और गहनता से समझने के लिए कुछ और गतिविधियाँ करें, कुछ बच्चे क्षेत्र की जीवनचर्या, पहनावे, खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्यौहारों आदि के बारे में प्रोजेक्ट बनाएँ। कुछ बच्चे अपने क्षेत्र में रहने वाले बड़े-बुज़ुर्गों से बातचीत करें, उनके दौर की, समय के साथ आये बदलाव की जानकारी प्राप्त करें, इसको लिखें, सभी बच्चों से कक्षा में साझा करें। यदि संभव हो तो आस-पास के क्षेत्रों में जाकर उनके जीवनचर्या के तौर-तरीकों के बारे में पता लगाने की कोशिश करें। अब बच्चों से विदा लेने का समय था। बच्चों की असीम ऊर्जा के दायरे से जाने का मन तो न था परंतु भरे मन से विदा ली। बच्चों से विदा होते-होते मेरी एक अभिलाषा यह कहकर पूरी कर दी कि गुरु जी हम अब से पाठ को पहले से ही घर से पढ़कर आएँगे, कुछ बातचीत करेंगे, गतिविधियाँ करेंगे और हाँ अपने पाठ खुद पढ़ेंगे। विषयाध्यापक की मौजूदगी में यह वचनबद्धता मेरे लिए तो जैसे बच्चों के साथ व्यतीत दो-सवा दो घंटों का सबसे खूबसूरत पारिश्रमिक, बल्कि उपहार ही था।

मैं, बच्चों के साथ बातचीत, उनके समूह में काम करने के दौरान और बाद में कक्षा में प्रस्तुतीकरण के दौरान बच्चों का अवलोकन कर ही रहा था। पहल करना, नेतृत्व करना, सहयोग, मिलजुलकर काम करना, दूसरों की बात सुनना, अपनी बात सलीके से रखना, अपनी बारी का इंतज़ार करना, दूसरों के विचार का सम्मान करते हुए अपना पक्ष रखना जैसे बहुत ही उपयोगी मूल्यों के अंकुरण बहुत से अवसरों पर नज़र आये। ये साक्ष्य बच्चे के विषय क्षेत्र एवं उससे इतर भी बच्चों के व्यवहार के बारे में बहुत उपयोगी सूचनाएँ हो सकती हैं, जिसे बच्चों के विषय से संबंधित संज्ञानात्मक एवं व्यक्तित्व के व्यापक पहलुओं के बारे में आकलन करते समय महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है और यकीनन लाया भी जाना चाहिये।

किसी भी विषय की पाठ्यचर्या का मुख्य सरोकार बच्चों को सार्थक अनुभव देने वाली तथा प्रत्येक बच्चे को इसमें शामिल करने वाली अधिगम प्रक्रिया होना चाहिए। इसके लिए पाठ्यपुस्तकें कुछ हद तक तो मदद कर सकती हैं, परंतु बहुत बार इससे बाहर निकलने के अवसर बच्चों को दिए जाएँ तो इससे बच्चों के लिए सीखने-समझने के अवसरों में बढ़ोतरी ही होती है। पाठ्यपुस्तक से बाहर निकलने के लिए 'यह भी ज़रूरी होगा कि हम विद्यार्थियों व सीखने की

प्रक्रिया के बारे में जो सोचते हैं उसमें मूलभूत बदलाव लाएँ।' प्रत्येक विषय की पाठ्यचर्या विषय के दृष्टिगत प्राप्य ज्ञान, कौशलों एवं मूल्यों को प्राप्त करने का निर्देश देती है। इनको प्राप्त करने के लिए विषय की पाठ्यपुस्तक एवं उसके विषय पाठ एक साधन मात्र हैं, अपने आप में लक्ष्य नहीं। इसके अलावा भी हमें बहुत सारी बातचीत, चर्चा, विचार-विमर्श, खोजबीन, गतिविधियाँ, प्रोजेक्ट, लोगों से पूछताछ, आसपास के इलाकों का भ्रमण आदि बहुत कुछ करने की भी ज़रूरत होती है। इसके अभाव में 'शिक्षार्थी जब तक अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को पाठ्यपुस्तक में निरूपित संदर्भों के संबंध में स्थित नहीं कर पाते और इस ज्ञान को समाज के अपने अनुभवों से जोड़ नहीं पाते, तब तक ज्ञान मात्र सूचना के ही स्तर पर रहता है।'

महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें विषय पाठ का उपयोग कब? कैसे? कहाँ? और किस प्रकार करना है?, यह हमारी शिक्षण योजना के दायरे में होना चाहिये। विषय पाठ के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए हमारे पास एक लचीली शिक्षण योजना है तो पाठ में लक्षित समझ, कौशल एवं मूल्यों को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ने में आसानी तो होती ही है, बच्चे भी ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का आनंद उठा सकते हैं। महत्वपूर्ण यह है कि हमें यह भली-भाँति मालूम है कि कब बातचीत करनी है? कब गतिविधियाँ करानी हैं? कब चर्चा करनी है? कब पुस्तक के पाठ का उपयोग करना है? और कब अपनी शिक्षण योजना में आवश्यकतानुसार बदलाव करने हैं? आदि-आदि। पाठ्यपुस्तकें एवं इसके विषय पाठ ज्ञान का अंतिम स्रोत नहीं हैं और न ही अध्यापक अंतिम संदर्भ। इसके लिए कक्षा में पाठ्यपुस्तकों एवं विषय पाठ से बाहर निकलने की ज़रूरत है, जैसा कि *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2005* स्पष्ट निर्देश देती है 'पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि वह बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाएँ बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक-केंद्रित बन कर रह जाए।'

यद्यपि इस संक्षिप्त अनुभव के आधार पर विषय पाठ के उपयोग को लेकर कोई सिद्धांत तो गढ़ा नहीं जा सकता और न ही कोई दावा ही किया जा सकता है। पाठ्यपुस्तक से बाहर निकलने एवं बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में खोजबीन के अवसर देने एवं अवलोकन करने की जिज्ञासावश यह उपक्रम, अंर्तदृष्टि देने में बहुत हद तक उपयोगी रहा कि बच्चों को खोजबीन एवं जाँच-पड़ताल के समुचित अवसर दिये जाएँ और दूसरा यह कि बच्चों द्वारा खोजबीन एवं जाँच-पड़ताल की प्रक्रिया में सतत हस्तक्षेप न करके, केवल बहुत ज़रूरी होने पर ही सुगमकर्ता के रूप में अपनी भूमिका के प्रति सचेत रहें, तद्नुरूप बच्चे की ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में सहभागी बनें तो बच्चे अपने ज्ञान का सृजन स्वयं करते हैं, इसके लिए कक्षा-कक्ष प्रक्रियाओं में ज़रूरी बदलाव भी करने होंगे।

अंतत: विद्यालय के प्रधानाध्यापक, विषयाध्यापक एवं अन्य अध्यापकों से कक्षा-कक्ष प्रक्रिया के बारे में संक्षिप्त विचार-विमर्श हुआ। विषयाध्यापक प्रक्रिया के प्रति उत्सुक दिखायी दिए, उनकी कुछ जिज्ञासाओं पर बातचीत भी हुई और इस प्रकार विद्यालय अनुश्रवण के एक सार्थक दिवस की संतुष्ट अनुभूति के साथ वापस लौटा।

टिप्पणी — संस्कृति को जानना समझना बहुत गूढ़ प्रक्रिया है, इसको जानने-समझने के लिए

बहुत ही सूक्ष्म अवलोकन की आवश्यकता होती है और वह भी सतत रूप से। अत: चार-पाँच या इससे अधिक कालांशों में भी बच्चे इसको जानने-समझने लगेंगे, यह अतिरेक उम्मीद ही कही जायेगी। कक्षा के स्तर एवं विषय की पाठ्यचर्या की अपेक्षानुसार बच्चे संस्कृति के तत्वों को पहचानने की समझ बना सकें, संस्कृति के तत्वों की खोजबीन का हुनर/कौशल अर्जित कर सकें, संस्कृति में निहित मूल्यों को समझने लगें, यह पर्याप्त कहा जा सकता है। इसके आगे यह समझ एवं हुनर तो उत्तरोत्तर अगली कक्षाओं में और उसके बाद के जीवन में परिपक्व होता जाएगा।

आभार – मैं रा. प्रा. वि. सिमाल गाँव, ब्लॉक-कपकोट, जनपद-बागेश्वर के प्रधानाध्यापक, विषयाध्यापक सहित सभी शिक्षकों का आभारी हूँ कि विद्यालय की दिनचर्या के बहुमूल्य समय में मुझे इसमें शामिल होने का अवसर दिया, विशेषकर विषयाध्यापक की सहृदयता के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने कक्षा में बच्चों के साथ काम करने की मेरी इच्छा के प्रति उदारता बरती। कक्षा 7 के बच्चों के प्रति तो मेरा हमेशा स्नेहातिरेक बना रहेगा कि उन्होंने उस विशेष दिन सहर्ष अपनी कक्षा का हिस्सा बना लिया।

ग्रंथ सूची

एनसीईआरटी. 2006. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005*. प्रथम संस्करण. मई. नयी दिल्ली.

____. 2007. *मननशील शिक्षक*. प्रथम संस्करण. जून, नयी दिल्ली.

ड्यूवी, जॉन. 2009. *स्कूल और समाज*. अनुवादक — सुशील कपूर. आकार बुक्स, नयी दिल्ली.

दिनकर, रामधारी सिंह. 1956. 'संस्कृति क्या है?' *संस्कृति के चार अध्याय*. प्रथम संस्करण. पृष्ठ 651–654. राजपाल एंड सन्स.

धनकर, रोहित. 2016. 'ज्ञान के निर्माण व उत्पादन पर शिक्षणशास्त्र का प्रभाव'. *शिक्षा विमर्श*. वर्ष 18. अंक 2 मार्च–अप्रैल. दिगंतर. पृ. 14. खो नागेरियान रोड, जगतपुरा, जयपुर.

प्रभाकर, विष्णु. 2012. *संस्कृति क्या है*. सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली.

मुकुन्दा, कमला. 2014. *स्कूल में आज भला तुमने क्या पूछा?* अनुवादक — पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा. एकलव्य प्रकाशन, भोपाल.

मैथ्यूज , गैरथ वी. 1996. बच्चों से बातचीत. अनुवादक — सरला मोहन लाल. ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा. लि. नयी दिल्ली.

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, उत्तराखंड. 2016–17. *सामाजिक विज्ञान भाग 2* (कक्षा 7). पृ. 88–98. दीपक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, हल्द्वानी, नैनीताल. उत्तराखण्ड के राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालयों के कक्षा 7 हेतु निर्धारित पाठ्यपुस्तक। इसमें शामिल हैं—परिवेश में मिलने वाली शाक-सब्जियां, फल, पकवान, पहनी जाने वाली वेशभूषा, बोली जाने वाली भाषा-बोली, त्यौहार एवं काम-धंधों की पहचान करना। उन कारणों की पहचान करना जिनके कारण इनमें अंतर आया। किसी स्थान विशेष पर जनसंख्या के जमाव (अधिक होते जाना) के कारण क्या हैं? पहाड़ी (पर्वतीय) क्षेत्रों के जीवन एवं मैदानी क्षेत्रों के जीवन में अंतरों की पहचान। अपने परिवेश का नजरी नक्शा बनाना। मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्र में जीवनचर्या के समान-असमान पहलुओं की खोजबीन करना । किसी विशेष क्षेत्र की जीवनचर्या को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान करना।

शर्मा, संतोष. 2006. *कन्सट्रक्टिविस्ट एप्रोच टू टीचिंग एंड लर्निंग — ए हैंडबुक फ़ॉर सेकेंडरी स्टेज*. प्रथम संस्करण. जनवरी. एनसीईआरटी, नयी दिल्ली.